आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 2/जून 2025
Received: 23/05/2025; Accepted: 28/06/2025; Published: 28/06/2025

बुत जब बोलते हैं तो बात जाती है दूर तलक

सीता कुमारी
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
विपत्र – sita.sikkimuniversity@gmail.com
सचल दूरभाष यंत्र संख्या - ९११३३१९०३१

सीता कुमारी, **बुत जब बोलते हैं तो बात जाती है दूर तलक**, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 5/अंक 2/जून 2025**,(138-141) https://doi.org/10.5281/zenodo.15776943

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

बुत हिंदी का एक देशज शब्द है, जिसको तत्सम विकल्प के रूप में मूर्त्ति या विग्रह शब्द प्रचलित है। बुत प्रायशः पाषाण, मृत्तिका, धातु अथवा काष्ठ जैसे उपादानों से निर्मित होते हैं। बुत हमेशा निष्पाण और मूक होते हैं, बोलते वे कदापि नहीं। उसमें श्वास-प्रश्वास, स्पंदन आदि का सर्वथा अभाव होता है। इसलिए निश्चेष्टता और निःशब्दता को व्यंजित करने के लिये 'बुत बनना' 'बुत बन बैठना' जैसे मुहावरें प्रचलन में है। इस संदर्भ में मूर्ति या विग्रह शब्द इसके स्थानापन्न नहीं हो सकते। ऐसा करते ही मुहावरे की अर्थवक्ता और सुंदरता तत्काल विनिष्ट हो जाती है।

'बुत जब बोलते हैं' शीर्षक से डॉ. सुधा अरोड़ा ने कहानी लिखी है, जिसमें स्पष्ट इंगित है कि न बोलने वाले बुत जब बोलते हैं, बातें दूर तक जाती हैं - पूरी मारक क्षमता के साथ, उम्मीद से ज्यादा विस्फोट के साथ। पूरी कहानी में तीन जीवंत मानव, तीन स्थलों पर बुत बनी दीखते हैं। दो तो आजीविका के लिए, पेशे के तौर पर बुत बने रहने का अभिनय करते हैं। तीसरा बुत एक ममतामयी माँ है, जों परिस्थितिवश बुत बनी-सी रहती है, किंतु कलेजे में धधकती संवेदनाओं के ज्वार को कठोर संयम में लपेट मौन का अवलंबन किए हैं। स्पष्टता के लिए कहानी की कथावस्तु का साथ-संक्षेप प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

कहानी में एक डॉ. दंपति-डॉ.देवाशीष कुमार एवं उसकी पत्नी डॉ.देवयानी कुमार- दोनों ही शहर के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय चिकित्सक हैं। दोनों की प्रैक्टिस खूब चलती है, आमदनी के रूपयों की गिनती करते आदमी का दम फूलने की स्थिति आ जाती हैं। इस डॉ. दंपति के दो बच्चे हैं- सिद्धार्थ और अभिजित जैसी की आधुनिक प्रद्धत्ति जोरों पर है, लोग अपनी संतानों को अपने पेशे में ही उतारना चाहते हैं। डॉ. देवाशीष कुमार अपने बड़े बेटे

सिद्धार्थ को डॉक्टर बनना चाहते हैं, जबकि सिद्धार्थ की अपनी मनोवृत्ति कला के क्षेत्र में रमती है और वह हर हाल में अपने चित्रवृत्ति में बदलाव के खिलाफ है। इधर डॉ. देवाशीष सनक की हद तक उसे मेडिकल कॉलेज में दाखिला दिलाना चाहते हैं। इसी मनोद्वन्द्व में उलझा सिद्धार्थ अपनी कार से बिजली के खंभे में टक्कर मार बैठता है, जिसमें उसकी जान चली जाती है। महज कार दुर्घटना समझ कर बात आयी-गयी हो तो जाती है। किंतु, सिद्धार्थ की मां-देवयानी इसे दुर्घटना न मानकर आत्महत्या समझती है और पूरी तरह से-अंदर से, बाहर से- टूट जाती है। वह अपना क्लीनिक बंद कर देती और महज घरेलू, औरत की भूमिका में आ जाती है। हां, जरूरतमंद रोगियों की निशुल्क सहायता वह अब भी बदस्तूर जारी रखती है। डॉ.सुधा अरोड़ा ने बड़ी दक्षता पूर्वक छोटे-छोटे उपदानों के माध्यम डॉ. देवयानी के घरेलू जीवन के चित्रण के बहाने उसके मनोभावों को उसकी अंतर्व्यथा को वाणी दी है। इस कहानी के पारायण से स्पष्ट हो जाता है कि घर के साज-संवार में देवयानी की कोई रुचि रह नहीं गयी है, जैसे-तैसे रह लेना भर ही हो पाता है। उसकी सजगता है तो सिर्फ इस बात में कि असमय काल कवलित अपने बड़े बेटे की दस साल से टंगी तस्वीर की साफ-सफाई में, उसके रख-रखाव में कोई कोताही नहीं। डॉ. देवाशीष है कि घर की बेहतरीन हालत पर हमेशा खींझते रहते हैं। छोटे बेटे अभिजीत की उक्ति देखिए- "पापा हमेशा दांत पीसते हुए ही क्यों बोलते हैं, समझ में नहीं आता। पर शब्द हैं कि अंदर नहीं पिसतें बाहर आ जाते हैं और घर की सारी पुरानी धूल खायी चीजों पर उफनने लगे हैं।" (अरोड़ा, 2015, पृ. 33) आमतौर पर स्त्रियां श्रृंगार प्रिय हुआ करती है किंतु, बेटे की अस्वाभाविक मृत्यु ने देवयानी को इतना निश्चेष्ट बना दिया है कि अभिजीत के शब्दों में "घर में तो माँ ऐसे कपड़े पहनती हैं कि उनसे साफ तो हमारे लक्ष्मी ताई दिखती हैं- साफ़ सुथरी चमकदार साड़ी और कान में चमकते सोने की बुदे और कलाई भर-भर लाल हरी कांच की चूड़ियां।" (अरोड़ा, 2015, पृ. 34) कुल मिलाकर, देवयानी अंतर्मुखी हो गयी है। अभिजित को कचोट है कि मां बोलती नहीं, सजती-संवरती नहीं।

कहानी का चूडांतआरोह तब आता है, जब डॉ. मेहता के बेटे की शादी में ये तीनों जन एक साथ शामिल होते हैं। फार्म हाऊस में शादी की पार्टी रखी गयी है और फार्म हाउस आधुनिकतम तकनीक वाली लक-दक करती प्रकाश-व्यवस्था में नहाया-सा, मधुर संगीत की सुरीली तानों तथा अनेक वाद्य-यंत्रों से सुसज्जित अत्यंत मनोहारी लग रहा है। प्रवेश द्वार पर ही दो बौने सतरी बने जीवित मानव के पुतले तैनात हैं, जो एयर इंडिया के महाराजा स्टाईल की वेशभूषा में है। अभिजित की निगाह उनकी गिरती-उठती पलकों से टकराती हैं और वह अपनी मां से कहता भी है कि 'यह दोनों स्टैचू नहीं, सचमुच के हैं। या कोई खास नोटिस नहीं लेती। फार्म-हाउस के अंदर के सुरम्य वातावरण एवं साज-सज्जा के अव्यातिभव्य उपकरणों के विस्तृत विवरण को पूर्ववर्ती कथा-शिल्प में प्रकृति-चित्रण का विकल्प माना जा सकता हैं। भीतर जाकर मां-बेटे कुछ स्टार्टस लेकर एक मेज पर जम जाते हैं और डॉ. अपनी मंडली में रम जाते हैं। साज-सज्जा के विविध आर्दूटम्स के बीच सर्वाधिक आकर्षक एक दृश्य-सज्जा है, जिसमें एक कृत्रिम बर्फीला पर्वत निर्मित है। उसी पर्वत शिखर पर नीले रंग से पुते जटाजुट धारी शिव की प्रतिमूर्ति बना एक किशोर बालक है, जिसने कपड़ों के नाम पर केवल मृगचर्म धारण कर रखा है, हाथों में त्रिशूल और डमरू उसे भगवान शिव का साक्षात विग्रह बना रहे हैं। बर्फ के शिलाखंडों से रूपायित हिमशिखर उसपर अर्धनग्न किशोरवय लड़का, वातावरण में ठंडक और एक पांव पर खड़ा नटराज रह-रह कर पैर बदलता हुआ। यही वह बुत है, जिसके कारण कहानी की मूल और केंद्रीय घटना घटित होती है और कथानक

चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता है। अब तक देवयानी का ध्यान उधर गया नहीं था, गया भी तो उसे प्रतिकृति मानकर, एक इवेंट के तौर पर समझ रही थी। अभिजीत के द्वारा बार-बार ध्यान आकृष्ट कराये जाने पर उसे प्रतीत हो गयी कि वह तो संजीव किशोरवय का लड़का है। बस, क्या था? बेटे की मौत के बाद 10 वर्षों तक बुत बनी मां का पारा सातवें आसमान को छूने लगा, फिर शुरू हुआ। माँ के बुत के बोलने का सिलसिला। डॉ. देवयानी ने इस इवेंट के मैनेजर की फजीहत की, लड़के को उतरवा कर कपड़े पहनवाये, खाना खिलवाया और उसने (देवयानी ने) वर-वधू के निमित्त जो शगुन के ₹ 5000 लिफाफे में लाये थे, उस लड़के को सौंप दिये और भविष्य के लिए आश्वासन भी दिये। इस घटना का दूसरा आयाम ज्यादा विचारोत्तेजक, मर्मस्पर्शी और मर्मदेवी हैं, जहां बुतों के बोलने की अत्यंत प्रखर अर्थवक्ता सिद्ध होती हैं।

जब वर-वधु को शगुन की रकम देने की बारी आती है, तो डॉ. देवाशीष को मालूम पड़ता है कि वह राशि तो शिव के बुत बने लड़के को जा चुकी है और लिफाफा खाली है ऐन वक्त कोई विकल्प नहीं दीखते। देवाशीष अपने साथ रुपयें लेकर चलते नहीं और देवयानी भी रिक्त हाथ ही है। एक नामचीन डॉ. दंपति की प्रतिष्ठा दाँव पर लगी दीखती है। वह बिफर पड़ता है- "एण्ड बाय द वे, वो मेरे पैसे थे। माय मनी! माय हार्ड् अर्नड मनी! एक मिनट नहीं लगाया और ₹ 5000 उसे पकड़ा दिये। बगैर मुझसे पूछे तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई- मेरी गाढी कमाई के पैसों को इस तरह एक दो टके के लड़के पर उड़ाने की।" (अरोड़ा, 2015, पृ. 46)इस कथन पर थोड़ा रुककर चिंतन करने की जरूरत है। 'माय हार्ड् अर्नड मनी' तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई- जैसे वाक्यांश डॉ. सुधा अरोड़ा के स्त्री-विमर्श संबंधी अवधारणा को नयी ऊंचाई प्रदान करते हैं। डॉ.अरोड़ा शुरू से ही नारी जाति की आत्मनिर्भता की पुरजोर वकालत करती रही है। उनका हमेशा यह मानना है कि 'यह भिक्षापात्र विरासत में देने के लिए है।' इसी शीर्षक का एक आलेख वे 'जनसत्ता' के 'वामा' स्तंभ के लिए(21मई1997)लिख चुकी हैं। कहानी का कथानक साफ बताता है कि अपनी डॉक्टरी के दिनों में देवयानी की कमाई देवाशीष के अधिक ही थी। अगर वह प्रैक्टिस जारी रखती तो ये ताने भरे वाक्य सुनने न पड़ते।

यहा सोचने वाली बात यह है कि अपने पति से अधिक कमाने वाली पत्नी की, वह भी उच्च शिक्षित, संभ्रांत परिवेश में, जब यह हालत है तो 'आम औरत एक जिंदा सवाल' तो बनेगी ही न? 'दो टके के लड़के' वाला जुमला देवाशीष के ब्याज से पुरुष वर्ग की हृदयहीन नृसंशता को उजागर तो करता ही है, मानवतावादी चिंतन के ज्वलंत प्रश्न छोड़ जाता है। फिर तो लेखिका का स्त्री-पक्ष एवं मानवतावादी चिंतन दहाड़ उठना है। बताया जा चुका है कि विगत दस वर्षों से मौन साधे, बुत बनी देवयानी जब बोलना शुरु करती है तो बोलती ही जाती है- "हां पैसे! तुम्हारे पैसे! शर्म आती है कहते हुए?.....यही पैसे थे न तुम्हारे, जब नोटों के बंडल पर बंडल भर कर ले गये थे सिद्धू को मेडिकल में एडमिशन दिलाने- डॉ. बनाना चाहते थे उसे..... तुम्हारे पास ये नोट, ये तुम्हारी गाढ़ी कमाई के पैसे न होते तो मेरा बेटा आज जिंदा होता। तुम्हारे नोटों ने मेरे बेटे की जान ले ली..... आज मेरे बेटे की शादी हो रही होती.....वह इस तरह की बिजली के खंभे से टकराकर अपनी जान नहीं दे देता। बाप नहीं, हत्यारे हो तुम। मार डाला तुमने उसे।" (अरोड़ा, 2015, पृ. 47)

इस स्थल पर मां की वेदना, उसका वात्सल्य, भौतिक संपदा की निरर्थकता, पत्नी का आक्रोश एक साथ मुखरित हो गया है। देवयानी का चलती गाड़ी से कूद जाने का असफल प्रयास उसकी स्त्री-जनित कुंठा को व्यक्त करता है। सच भी यही है कि स्त्री-जाति संघर्ष अपना रंग लाते-लाते आखिरी क्षणों में निढाल पड़ जाती है। फिर भी संघर्ष जारी है, जारी रहेगा और जारी रहना ही एक मात्र उचित विकल्प भी है। यह हिंदी साहित्य का सौभाग्य है कि डॉ. सुधा अरोड़ा अपने साहित्य में स्त्री-पक्षधर का सार्थक आवाज देती है और तदनुरूप सामाजिक संगठनों के माध्यम से उसे क्रियान्वित करने में सदैव मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित रहती है। इसलिए डॉ. अरुण होता लिखते हैं- "समकालीन परिदृश्य में सुधा अरोड़ा की भूमिका और सक्रियता महत्वपूर्ण हैं। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रेयंवदा की कथा पीढ़ी के बाद, सातवें दशक में धमक की तरह कथा-परिदृश्य पर उपस्थित प्रखर एवं प्रतिभा संपन्न कथाकार सुधा अरोड़ा आज बेहद प्रशंसित और चर्चित हैं। उन्होंने कथा सृजन से कथा संसार में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। तत्काल प्रसिद्ध या 'तुरंता' से बचाकर हिंदी कहानी को विश्वसनीय बनाये रखने की प्रति सृजनात्मक सजगता उन्हें अपने समकालीन कथाकारों से अलग स्थान प्रदान करवाती है। (होता, 2021, पृ. 283)

'बुत जब बोलते हैं'। शीर्षक कहानी पर डॉ. अरुण होता की टिप्पणी है-"बुत नहीं बोलते हैं। बुत चुप रहते हैं, बिल्कुल खामोश। कहानी में बुत कोई मूर्ति या प्रतिमा नहीं बल्कि 'माँ' है नारी है। पुरुषवादी वर्चस्व उसे बुत बनाए रखता है, ताकि उसकी सत्ता, बरकरार रहे। सत्ता को विरोध पसंद नहीं है। सत्ता चाहती है कि वह सिर्फ वह बोले, अन्य सभी सुने। कोई उसे सवाल न करें, जुबान न खोले। इस कहानी-बुत जब बोलते हैं- के कथ्य पर प्रो.अरुण होता के विचार गंभीर हैं – "कहानी के केंद्र में नोटों का जत्था ही है। भूमंडलीकारण के दौर में पूंजी का वर्चस्व बढ़ा है। पूंजी ने मनुष्य को व्यक्ति में तब्दील कर दिया है। उसने तमाम रिश्ते-नातों को प्रोडक्ट बना कर रख दिया हैं। बाजारवादी व्यवस्था में सब कुछ बिकाऊ साबित हो रहा है। पूंजी और बाजार ने संवेदना,आत्मीयता, मानवता के तमाम गुणों को फालतू सामान की सूची में डाल दिया है। संवेदना छीज रही है। मानवता कराह रही है। लेकिन पूंजी सर्वशक्ति संपन्न हो रही है।" (होता, 2021, पृ. 113) इस तरह यह एक बहु आयामी कहानी है इसमें जितनी चिंता व्यक्ति की है, उतनी ही समाज की भी। परिवार की चिंता है तो देश की भी। मातृत्व और संवेदना के व्यापक धरातल का चित्रण है तो पूंजीवादी बाजारवादी कुचक्रो से पीड़ित मानव जाति के हाहाकार का भी। अतीत और वर्तमान का भी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

अरुण होता. (2021). *स्त्री पक्षधरता का मुखर स्वर* (प्रथम सं.). (डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे, सं.) कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत: अमन प्रकाशन.

सुधा अरोड़ा. (2015). *बुत जब बोलते हैं* (प्रथम सं.). नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

****